CHETANA
International Journal of Education

Impact Factor
SJIF=5.689

Peer Reviewed/
Refereed Journal

ISSN-Print-2231-3613
Online-2455-8729

Prof. A.P. Sharma
Founder Editor, CIJE
(25.12.1932 - 09.01.2019)

Received on 9th July 2020, Revised on 18th July 2020; Accepted 29th July 2020

आलेख

जाम्भोजी की वाणी में योग दर्शन

* अशोक धारणिया, *शोधार्थी*
डॉ. पूजा धमीजा, *शोध निदेशक*
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर
Email: rajaramdharniaauto@yahoo.com, Mob. –9413388479

मुख्य शब्द – योग–साधना, सिद्ध–साधक, **योग दर्शन,** उपदेशक, विष्णु अवतार आदि।

भारतभूमि ऋषियों–मुनियों एवं सिद्ध–योगियों की भूमि रही है। आदिदेव शिव योग–साधनारत रहते हैं। गीता के उपदेशक भगवान श्री कृष्ण योगेश्वर कहलाते हैं। योग–साधना सिद्ध–साधकों के लिए सिद्धि दायक रही है। भगवान जंभेश्वर भी साक्षात् विष्णु अवतार ही हैं, अतः उनकी योग साधना भी पूर्ववर्ती योगियों से तुलनीय है।

योग दर्शन के अन्तर्गत अष्टांग योग का वर्णन है। पतंजलि के अनुसार चित्त वृत्तियों को चंचल होने से रोकना, मन को इधर–उधर न भटकने देना और केवल एक ही वस्तु और उद्देश्य के लिए स्थिर रखना योग है। अष्टांग योग के पांच अंग बताए गए हैं – यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार। यहाँ प्रत्याहार से तात्पर्य बाह्य वृत्तियों को रोककर मन को तल्लीन, एकाग्र या विलीन करना है। धारणा, ध्यान और समाधि अंतरंग साधना है, जिनका एक सम्मिलित नाम संयम है। जाम्भोजी ने प्रसंग अनुसार इन सभी का उल्लेख अपनी वाणी में किया है। "संजम"(संयम) और उसके मुख्य अंग ध्यान को उन्होंने तत्त्व प्राप्ति के लिए आवश्यक साधन माना है। उन्होंने अपनी वाणी में इसका उल्लेख इस प्रकार किया है –

ध्रंम आचारे सीले संजमे
जिंहके नादे विंदे सीले संजमे
संजमे सीले सहज पतीनां
सुचि सिनांने संजमे चालौ
ग्यांने ध्यांने नादे विंदे जे
नर लैणां तंत भी तांही लीयो

अर्थात् ध्यान और ज्ञान से परमात्मा या आत्मा की प्राप्ति होती है। इस संबंध में पतंजलि के योग दर्शन का कथन है कि ध्यान से क्लेशों की वृत्तियों का नाश होता है।

ध्यानहेयास्तद्वृत्तयः

गीता के अनुसार परमात्मा को कितने ही साधक तो शुद्ध मन, सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा कितने ही ज्ञान, योग द्वारा देखते हैं, और कितने ही निष्काम कर्मयोग के द्वारा देखते हैं।

जाम्भोजी ने अपनी वाणी में योग और यौगिक साधनाओं के जगह–जगह संकेत किए हैं और उनका उल्लेख भी मिलता है। इनमें योग के नाम पर प्रचलित पाखण्ड और पाखण्डियों द्वारा योग विषयक अपना कथन, यौगिक साधना इत्यादि के उल्लेख हैं। जाम्भोजी ने प्राणायाम, कुण्डलिनी जागरण और उसके उत्थान, विभिन्न आसनों आदि की साधना प्रक्रिया और पद्धति का विवरण नहीं दिया। साधना विशेष को कैसे और किस प्रकार किया जाए, इसकी व्यावहारिक पद्धति का उल्लेख नहीं है। इसका कारण स्पष्ट है कि योग साधना का क्षेत्र केवल सुनकर या पढ़कर उसका सार्थक क्रियान्वयन नहीं हो सकता। बिना गुरु के योग का ज्ञान प्राप्त करना अच्छा नहीं है। इसका उल्लेख योग सूत्र में भी मिलता है और जाम्भोजी के बहु–संख्यक अनुयायी, साधारण कृषक और आम गृहस्थजन थे जिनके लिए दैनिक कार्यों के साथ–साथ यौगिक साधनाएं संभव नहीं थी, अतः उन्होंने अपने अनुयायियों को प्रत्याहार और प्राणायाम विषय का विशेष उल्लेख किया है। "नियम" के पालन किए बिना ध्यान और समाधि का सिद्ध होना कठिन है। "यम" के अन्तर्गत झूठ, कपट, चोरी, व्यभिचार, हिंसा, परिग्रह इत्यादि वृत्तियों को नष्ट करना "यम" है तथा तन–मन की पवित्रता, असंग भावना, संतोष, तप, स्वाध्याय, परमात्मा की उपासना इत्यादि "नियम" के अन्तर्गत आते हैं। "नियम" के पालन के बिना तो योग साधना ही नहीं हो सकती। कोई भी आध्यात्मिक साधना तभी सफल होती है जब उपरोक्त वर्णित "यम" और "नियम" का पालन हो। अतः जाम्भोजी ने अपनी वाणी में अपने अनुयायियों को अष्टांग योग के तीन आयाम यम, नियम और प्रत्याहार पर विशेष जोर दिया, जिससे मन की पवित्रता संभव हो, साथ ही साथ तन की पवित्रता हो। इसके बाद प्राणायाम के आसन में या सुखासन में, "संध्या वन्दन", "हवन" तथा "सांझ–आरती" के नियमों को बताकर अपने–आप को ईश्वरीय ध्यान में तल्लीन या आरोपित करना या अपनी मानसिक भावनाओं को ईश्वरोपासना में स्थिर कर यौगिक साधनाओं के अंतिम लाभ मोक्ष को प्राप्त करने का निर्देश दिया है।

मन्त्र योग

सिद्धान्त यह है कि यह संसार नाम रूपात्मक है। नाम और रूप से ही जीव अविद्या में फंसकर जकड़ा रहता है। मनुष्य जिस भूमि पर गिरता है उसी के आलम्बन से उठ सकता है। अतः नाम और रूप के अवलम्बन से ही जब वह फंसता है तो नाम और रूप के अवलम्बन से मुक्त भी हो सकता है। अतः उस नाम का, भगवत रूप का अवलम्बन लेकर साधक बंधन से मुक्त होकर मुक्ति लाभ प्राप्त कर सकता है –

नामरूपात्मिका सृष्टिर्यस्मात्तदवलम्बनात्।

बन्धनान्मुच्यमानोऽयं मुक्ति प्राप्नोति साधकः।।

इसमें सारगर्भित या प्रपत्ति भाव भी लक्षित होता है। जाम्भोजी ने विष्णु नाम को मन्त्र कहा है और उसके नाम स्मरण का आदेश दिया है। नाम, जप, साधना तत्त्व प्राप्ति का सर्वोत्तम, सरल उपाय है। क्योंकि जाम्भोजी के अनुयायी सरल, सीधे–सादे व्यक्तित्व वाले गृहस्थ किसान थे जो इस साधना को दैनिक कार्यों के साथ–साथ सम्पन्न कर सकते थे।

लय योग

इस योग का सिद्धान्त यह है कि मानव शरीर ब्रह्माण्ड की प्रतिकृति है, जो ब्रह्माण्ड में है वह पिण्ड (शरीर) में है। ब्रह्म और उसकी शक्ति का जैसा विलास ब्रह्माण्ड है, वैसा मानव पिण्ड भी है। इसी मानवता के अनुसार मनुष्य के शरीर में कुण्डलिनी नामक ब्रह्म शक्ति या मूल शक्ति है। यह प्रसुप्त रहकर अविद्या के प्रभाव से सृष्टि क्रिया करती है। यह जगत् की सृजन शक्ति का प्रतीक है। साधना से इसको जागृत कर सहस्रार में लय करना लय योग का लक्ष्य है। जीव और ब्रह्म में कोई भेद नहीं है। "जीवो ब्रह्मैव नापरः" जीव प्रारब्ध कर्मों के अनुसार दोष भी संग लेकर आता है पर दो शक्तियों के साथ आता है – कुण्डलिनी शक्ति और प्राण शक्ति। किन्तु इसके अविद्याजनित प्रभाव से जीव रूपी ब्रह्म स्वयं को जगत् और ब्रह्म से भिन्न समझता है। इसका स्वरूप एक सोई हुई सर्पणि के समान और रंग वर्णांता के समान है। इसको वश में कर लेने से अज्ञान अंधकार का नाश हो जाता है। यह सर्पणि के समान स्वयंभू लिंग के त्रिकोणाकार अग्नि चक्र में साढ़े तीन कुण्डली मारकर सोती है। मेरुदण्ड का निम्नतम बिन्दु जो वायु और

उपस्थ के मध्य भाग में है, स्वयंभू लिंग कहलाता है। जब तक वह सोती है तब तक सारा तेज नीचे से क्षरित होता रहता है। फलतः प्राण शक्ति क्षीण होती रहती है। साधक जब मूल बंध लगाकर इसे जगा देता है तब यह मेरुदण्ड के सहारे प्राणशक्ति ऊर्जा ऊपर छोड़ने लगती है। मेरुदण्ड में 6 चक्र माने गए हैं। इनको कमल भी कहते हैं। 6 चक्र ये हैं –

1. मूलाधार चक्र – गूदा के पास मूलाधार चक्र है जो मेरुदण्ड के निम्नतम बिन्दु पर स्थित है, जिसमें चार दल हैं। यहाँ पर सूर्य की स्थिति है। सामान्य अवस्था में यह गगन मण्डल में स्थित चन्द्रमा के अमृत को सोखता रहता है। इस कारण धीर–धीरे मनुष्य पर जरा मृत्यु का प्रभाव न होने लगता है। जाम्भोजी ने अपनी वाणी में निम्न उक्ति कहकर इस चक्र की ओर संकेत किया है –

   "अरधक चंदा निरधक सूरूं"

2. स्वाधिष्ठान चक्र – यह चक्र नाभि से थोड़ा नीचे स्थित है। इसके कुछ ऊपर दस दलवाला चक्र है, जिसे स्वाधिष्ठान चक्र कहते हैं।
3. मणिपुर चक्र – यह चक्र नाभि के पास स्थित है। यह नाभि शरीर का केंद्र बिन्दु होने के कारण इसे मणिपुर चक्र कहते हैं।
4. अनाहत चक्र – यह हृदय के पास स्थित है। इसके 12 दल हैं।
5. विशुद्ध चक्र – यह चक्र कण्ठ के पास स्थित है। इसमें 16 दल वाला कमल है।
6. आज्ञा चक्र– भ्रूमध्य (भ्रूमण्डल) में इसकी स्थिति मानी जाती है। जिसके दो दल हैं। इस चक्र में पहुँचने पर दिव्य दृष्टि प्राप्त होती है और साधना में अवरोह का भय नहीं रहता –

   "जोगी सो तो जुगि जुगि जोगी,

   अब भी जोगी सोई"

जाम्भोजी ने उपर्युक्त उक्ति कहकर इस स्थिति को इंगित किया जब कुण्डलिनी मेरुदण्ड में से होकर ऊपर जाती है तब एक–एक चक्र को जगाती हुई या चेतन करती हुई चलती है। इससे वे सारे चक्र खुल जाते हैं जिससे साधक की अनेक शक्तियाँ खुलकर जागृत हो जाती हैं। योग विषयक ग्रन्थों में इन विभिन्न शक्तियों का उल्लेख किया गया है। यह आज्ञा चक्र ही तंत्रोक्त शिव क्षेत्र या शिव का तीसरा नेत्र है।

इन 6 चक्रों को जगाकर कुण्डलिनी अंतिम चक्र में पहुंचती है जिसमें सहस्र दल हैं। अतिन्द्रिय दृष्टि से देखने पर इस चक्र के एक हजार दल दिखाई देते हैं। इसी को शून्य, शून्यमण्डल, गगनमण्डल, शून्यगगन, आकाश, ऊर्ध्वमण्डल इत्यादि कहते हैं। इस सहस्रार को प्रज्वलित करना या कुण्डलिनी को लय करना लय योग साधना की अंतिम सीमा है। इसमें शिव का वास (स्थान) है। इसलिए इसे कैलाश भी कहते हैं। कैलाश के कारण इसमें मानसरोवर या सरोवर की भी कल्पना की गई है, जिसमें निर्लिप्त चित्त रूपी हंस निवास करता है। यहीं अमृत स्रावक चन्द्रमा स्थित है पर उसके प्रभाव से सामान्यतः जीव वंचित्त रहता है, क्योंकि अमृत के स्राव को मूलाधार स्थित सूर्य सोख लेता है। चन्द्रमा के इस प्रभाव से वंचित्त रहने को श्री जाम्भोजी ने कहा है कि –

"नित ही मावस, नित ही सकरांती"

अर्थात् यह चन्द्रमा सूर्य संयोग योग साधनाओं का प्रधान उद्देश्य है। इन चक्रों की संख्या तथा उनकी दल संख्या आदि उपनिषदों में भी उल्लेखित है।

मेरुदण्ड में इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना नाड़ियाँ

कुण्डलिनी के चक्रों का वेधन मार्ग इन उक्त नाड़ियों से होकर है। मूलाधार चक्र में एक केंद्र है, जिसमें 72 हजार नाड़ियाँ निकलती हैं। शाखा और प्रशाखाओं को मिलाकर इनकी संख्या तीन लाख पचास हजार मानी जाती हैं। इनमें तीन मुख्य हैं – इड़ा, पिंगला और सुषुम्ना। इनको गंगा, जमुना और सरस्वती भी कहते हैं। जाम्भाणी साहित्य में जाम्भोजी ने सुगरा मन्त्र में इसका उल्लेख किया है। साथ–ही–साथ सबदवाणी में भी निम्न सबद में इनका उल्लेख है–

चन्द सूर दोय बैल रचीलो, गंग जमन दोय रासी

ना मेरे माई ना मेरे बाप, अलख निरंजन आप ही आप

गंगा यमुना बहै सरस्वती, कोई कोई नहावे बिरला जती।

जाम्भोजी ने उपरोक्त उक्तियों में इनको संकेतित किया है। सुषुम्ना को सुखमणी और कहीं–कहीं श्रुता भी कहा जाता है। ये तीनों मूलाधार से निकलती हैं। इड़ा मेरुदण्ड के बाएं भाग से, पिंगला उसके दक्षिणी भाग से और सुषुम्ना उसके बीच में से होकर निकलती है। मूलाधार चक्र से निकलकर सभी चक्रों को भेदती हुई यह ऊपर चढ़ती है। इड़ा बाएं नासारंध्र से, पिंगला दाएं नासारंध्र से और सुषुम्ना नासिका के ऊपर ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है। ब्रह्मरंध्र भ्रूमध्य में स्थित है। यहाँ इनका संगम होता है, इसलिए इस बिन्दु को त्रिवेणी या त्रिकुटी कहा जाता है। सुषुम्ना बीच की और सबसे ओजस्विनी नाड़ी है। यह मेरुदण्ड के बीचों–बीच चलती हुई ब्रह्मरंध्र में पहुँचती है। यहाँ पहुँचने पर इड़ा और पिंगला प्रायः इसके मुख को अवरुद्ध कर इसकी क्रिया को रोके रहती है। नीचे मूलाधार के मध्य में कुण्डलिनी मूलाधार स्थित नाड़ियों के केन्द्र को पूर्णतः ढककर सोई रहती है और सुषुम्ना के निचले छिद्र में अपनी पूंछ प्रविष्ट किए रहती है। इस प्रकार सुषुम्ना ऊपर और नीचे दोनों छोरों पर अवरुद्ध रहती है। यौगिक क्रियाओं की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सुषुम्ना में शुद्ध प्राण वायु का संचार अनवरत रहे। यह आसन, प्राणायाम और मुद्राओं द्वारा सम्पन्न होता है। इन क्रियाओं से योगी के कुण्डलिनी को वश में करके सुषुम्ना का मार्ग उन्मुक्त कराना तथा कुण्डलिनी को ऊर्ध्ववृत्ति कर चक्रों को भेदते हुए उसको सहस्र दल कमल में लय या निमग्न करना चाहिए, आसन, प्राणायाम और मुद्राओं का महत्त्व इस कारण से है। योग सिद्धि के लिए आसन अनिवार्य है। हठ योग के ग्रन्थों में 84 आसनों का वर्णन मिलता है। किन्तु, उनमें सिद्धासन और पदमासन दो मुख्य हैं। इनमें भी सिद्धासन को श्रेष्ठ माना गया है। जिसका उल्लेख श्री जाम्भोजी ने किया है –

"आसन छोड़ि सिधासण बैठो"

प्राणायाम की तीन क्रियाएं हैं – 1. पूरक (सांस को खींचना), 2. कुम्भक (सांस को रोककर रखना) तथा 3. रेचक (सांस को बाहर निकालना)। इसका उद्देश्य है अपान वायु को आज्ञा चक्र में स्थिर कर देना, जहाँ वह प्राणवायु या जीवनशक्ति बन जाए। जाम्भोजी ने इसका संकेत किया है –

सपत पयाळे भुंय अंतरि;

अंतरि राखीलो अटळा टळूं।

अलाह अलेख अडाळ अजूंनी सिंभू।

पवण अधारी पिंड ज लूं।

आसन और प्राणायाम की मिली–जुली यौगिक क्रियाओं को मुद्रा कहते हैं। जाम्भोजी ने उन्मनी मुद्रा का उल्लेख अपनी सबद वाणी में किया है –

उरध ज षैंणों उंनमंन रोवत;

उन्मनी मुद्रा का संबंध आंखों की दृष्टि को स्थिर करने और उसे अंतर्मुख करने अर्थात् एकाग्रता प्राप्त करने से है। दूसरे शब्दों में इससे मन को स्थिर करने का भाव द्योतित है या इंगित है।

कुण्डलिनी जब जागृत होकर प्राण ऊर्जा ऊपर की ओर उठती है तब उसकी इस गति से जो विस्फोट होता है उसे नाद कहते हैं। यह नाद अनाहद रूप से सारे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। नाद, ज्योति या ब्रह्म रूप है और सारा जगत् नादात्मक या नादमय है। इस दृष्टि से नाद के दो भेद है। आहत और अनाहत। अनाहत नाद को केवल योगी ही सुन सकते हैं। अंतःस्थ नाद को सुनने के लिए एकाग्र चित्त होकर शान्तिपूर्वक आसन जमाकर बैठना और आंख, कान, नाक, मुंह सबकी क्रिया बंद कर देनी चाहिए। अभ्यास की अवस्था में पहले मेघ गर्जन, भेरी, शंख, घंटी आदि की ध्वनि के समान गंभीर ध्वनि सुनाई पड़ती है। फिर अभ्यास करने पर क्रमशः वह किंकणी, वंशी, भ्रमर आदि की ध्वनि के समान सूक्ष्म या झीणी होती जाती है। इस प्रकार अभ्यास करते–करते चित्त, नाद रूपी

ब्रह्म में लीन हो जाता है। श्री जाम्भोजी ने अपने सबदों में झीणी वाणी सुनने का आदेश दिया है। उन्होंने साधना की इस अवस्था को निम्न प्रकार व्यक्त किया है –

ते सरवर कित नीरूं ?

वाजा लो भल वाजा लो;

वाजा दोय गहीरूं।

एक वाजै नीर बरसै;

दूजै मही विरोळंत खीरूं।

जिंहकै सार असारूं पार अपारूं;

गुर का सबद ज झींणी बांणी;

दूरयां हीं तैं दूरि सुंणीजै;

सो सबद गुणांकारूं गुणांपारूं;

गुणां सारूं, बळे अपारूं।

अर्थात् इस सबद में शब्दब्रह्म की महिमा का महत्त्व है। शब्द का नाद ओंकार रूप में समस्त ब्रह्माण्ड में और मनुष्य में अनाहत नाद के रूप में व्याप्त है। जाम्भोजी ने यहाँ दो नादों का संकेत किया है, बाजा सुनो और श्रेष्ठ बाजा सुनो। बाजा से संकेत है शब्द ब्रह्म को पहचानने से और "भल वाजा लो" का घट में हो रहे अनाहत नाद को निरन्तर सुनने और ब्रह्म तत्त्व को जानने से है। दोनों ही बाजों की ध्वनि गहन और गंभीर है। छठी पंक्ति में एक बाजा तो बादलों का है। जब मेघ गर्जन पर भगवत कृपा होती है तो अमृत रूपी वर्षा जल बरसता है, जिससे प्रकृति में सभी वनस्पति एवं जीवों का कल्याण होता है। ऊपर तीसरी पंक्ति में नीर शब्द से इसी को संकेतित किया है। दूसरा बाजा वह है जो दही को बिलोते समय बजता है अर्थात् हृदय में अमृत तत्त्व रूपी आत्मा का निवास है। जहाँ निरन्तर अनाहत नाद सुनाई देता है, यह नाद साधना ही दही मथना या बिलोना है। इससे आत्म तत्त्व या ब्रह्म तत्त्व का अनुभव हो सकता है। ऊपर आए सरवर शब्द से तात्पर्य हृदय स्थल से है।

उक्त सबद की अंतिम पक्तियों में जाम्भोजी ने कहा है कि हे प्राणी! तू, तो इस उत्तम अनाहत नाद को ही सुन। अनंत युगों तक वहीं सत्य है, ऐसा जान। अपने हृदय स्थल में हो रहे अनाहत नाद को सुनना चाहिए जो चिरंतन या शाश्वत सत्य है। गुरु ज्ञान से जब साधक यह झीणी वाणी सुनने लगता है तब उसको ब्रह्म की प्राप्ति होती है। साधक यह वाणी ध्यान की उच्चावस्था में ही सुन सकता है और यह सबद शब्द ब्रह्म सर्वत्र ब्रह्माण्ड में व्याप्त है और दूर–दूर तक सुनाई देता है, वही गुणकारी है। उस शब्द ब्रह्म के गुणों का कोई आर या पार नहीं है। वहीं गुणों का सार रूप है और अपार शक्तिशाली है।

बिश्नोई सम्प्रदाय अर्थात् जाम्भोजी के अनुयायी आचरण और कर्म प्रधान सम्प्रदाय है। इसमें कर्म और सदाचरण का विशेष महत्त्व है। चरित्र का बोधक प्राचीन शब्द "आचार" है। मनु, याज्ञवल्क्य आदि शास्त्रकारों ने आचार शब्द का प्रयोग सद्व्यवहार के लिए किया है। आचार का अर्थ ही व्यवहार, चरित्रशील विचार, कर्तव्य, पवित्रता इत्यादि है। रघुवंश में कालिदास ने आचार शब्द का प्रयोग किया है। इस प्रकार आचार और चरित्र पर्यायवाची शब्द है। धर्मशास्त्रों में आचार का बड़ा महत्त्व है। आचार के महत्त्व को दर्शाने के लिए जाम्भोजी ने कहा है कि –

को को आचारी आचारे लीणां, संजमे सीले सहज पतीना

अर्थात् कोई आचारवान पुरुष संयम और शील के पालन से आत्म तत्त्व को पा सकता है। यहाँ आत्म तत्त्व को "सहज" शब्द से इंगित किया गया है। यहाँ आचार का अर्थ सदाचरण है। जाम्भोजी के उत्तरकालिक कवि कैशोजी गोदारा ने "कथा चित्तौड़ की" में गंगा पार के बिश्नोइयों द्वारा चित्तौड़ की झालीराणी को अपना परिचय देते हुए कहा गया हैं कि –

अन्तरि खोजां ग्यान विचार, आचारी चालां आचार।

राणीजी सांभळो विचारि, इसड़ो धरम इसड़ो आचार।।

कैशोजी के गुरु भाई तथा वील्होजी के शिष्य सुरजन जी पूनिया ने "कथा औतार की" में आचार का वर्णन इस प्रकार किया है –

गुर फुरमाई करे आचार, ब्रंभ ग्यान को लहै विचार।

सहज दया ठहरावै दोय, मरतकि आवागुवणि न होय।।

जाम्भोजी की वाणी में उल्लेखित "सहज" शब्द का अर्थ आत्मा, जीवात्मा है। जीवात्मा को शरीर से भिन्न समझा जाता है। उक्त कथन से इस बात की पुष्टि होती है। "सहज" (आत्मज्ञान) और दया ये दो गुण जाम्भोजी ने अपने अनुयायियों के लिए निश्चित किए हैं। अनेक उदाहरणों से यह भी स्पष्ट होता है कि जाम्भोजी ने गृहस्थ आश्रम पर ही विशेष बल और ध्यान दिया है। आचार का आधार मुख्यतः शास्त्र और समाज में मान्य स्वस्थ, नैतिक परम्पराएं हैं और विचार के अन्तर्गत समस्त जीवन के क्रियाकलाप समाहित है। श्रेष्ठ आचार परम्परा से संस्कृति का और श्रेष्ठ विचार परम्परा से सभ्यता का सर्जन होता है। आचार और विचार पर ध्यान देकर उनके पालन का आग्रह कर जाम्भोजी ने सभ्यता और संस्कृति के क्षेत्र में बहुत बड़ा योगदान किया है।

*** Corresponding Author**
अशोक धारणिया, *शोधार्थी*
डॉ. पूजा धमीजा, *शोध निदेशक*
टांटिया विश्वविद्यालय, श्रीगंगानगर
Email: rajaramdharniaauto@yahoo.com, Mob. –9413388479